

घरजमाई (कहानी)

हरिधन जेठ की दुपहरी में ऊख में पानी देकर आया और बाहर बैठा रहा। घर में से धुँआ उठता नज़र आता था। छन-छन की आवाज भी आ रही थी। उसके दोनो साले उसके बाद आये और घर में चले गये। दोनों सालों के लड़के भी आये और उसी तरह अन्दर दाखिल हो गये; पर हरिधन अन्दर न जा सका। इधर एक महीने से उसके साथ यहाँ जो बरताव हो रहा था और विशेषकर कल उसे जैसी फटकार सुननी पड़ी थी, वह उसके पाँव में बेड़ियाँ-सी डाले हुए था। कल उसकी सास ही ने तो कहा था, मेरा दी तुमसे भर गया, मैं तुम्हारी जिन्दगी का ठेका लिये बैठी हूँ क्या? और सबसे बढ़कर अपनी स्त्री की निष्ठुरता ने उसके हृदय के टुकड़े कर दिये थे। वह बैठी यह फटकार सुनती रही, पर एक बार भी तो उसके मुँह से न निकला, अम्माँ, तुम क्यों इनका अपमान कर रही हो? बैठी गट-गट सुनती रही। शायद मेरी दुर्गति पर खुश हो रही थी। इस घर में वह कैसे जाय? क्या फिर वही गालियाँ खाने, वही फटकार सुनने के लिए? और आज इस घर में जीवन के दस साल गुज़र जाने पर यह हाल हो रहा है। मैं किसी से कम काम नहीं कहता हूँ? दोनों साले मीठी नींद सोते रहते हैं और मैं बैलों को सानी-पानी देता हूँ, छाँटी काटता हूँ। वहाँ सब लोग पल-पल पर चिलम पीते हैं, मैं आँखे बन्द किये अपने काम में लगा रहता हूँ। संध्या समय पर घरवाले गाने-बजाने चले जाते हैं। मैं घड़ी रात तक गायेँ-भैसे दुहता हूँ। उसका यह पुरस्कार मिल रहा है कि कोई खाने को भी नहीं पूछता। उलटे और गालियाँ मिलती हैं।

उसकी स्त्री घर से डोल लेकर निकली और बोली - ज़रा इसे कुएँ से खींच लो, एक बूँद पानी नहीं है। हरिधन ने डोल लिया और कुएँ से पानी भर लाया। उसे जोर से भूख लगी हुई था। समझा, अब खाने को बुलाने आयेगी, मगर स्त्री डोल लेकर अन्दर गयी तो वहीं की हो रही। हरिधन थका-माँदा, क्षुधा से व्याकुल पड़ा सो रहा। सहसा उसकी स्त्री गुमानी ने आकर उसे जगाया।

हरिधन ने पड़े-पड़े ही कहा - क्या है? क्या पड़ा भी न रहने देगी या और पानी चाहिए?

गुमानी कटु स्वर में बोली- गुरति क्यों हो, खाने को बुलाने आयी हूँ।

हरिधन ने देखा, उसके दोनो साले और बड़े साले के दोनो लड़के भोजन किये चले जा रहे हैं। उसकी देह में आग लग गयी। मेरी अब यह नौबत पहुँच गयी कि इन लोगों के साथ बैठ कर खा भी नहीं सकता। मैं इनकी जूठी थाली चाटनेवाला हूँ। मैं इनका कुत्ता हूँ, जिसे खाने के बाद टुकड़ा रोटी डाल दी जाती है। यही घर है, जहाँ आज से दस साल पहले उसका कितना आदर-सत्कार होता था। साले गुलाम बने रहते थे। सास मुँह जोहती रहती थी। स्त्री पूजा करती थी। तब उसके पास रुपये थे, ज़ायदाद थी। अब वह दरिद्र है। उसकी सारी ज़ायदाद को इन्हीं लोगो ने कूड़ा कर दिया। अब रोटियों के भी लाले हैं। उसके जी में एक ज्वाला-सी उठी कि इसी वक्रत अन्दर जाकर सास को और साली को भिगो-भिगोकर लगाए, पर जब्त करके रह गया। पड़े-पड़े बोला- मुझे भूख नहीं है। आज न खाऊँगा।

गुमानी ने कहा - न खाओगे मेरी बला से, हाँ नहीं तो! खाओगे, तुम्हारे ही पेट में जायेगा, कुछ मेरे पेट में थोड़े ही जायेगा।

हरिधन का क्रोध आँसू बन गया। यह मेरी स्त्री है, जिसके लिए मैंने अपना सर्वस्व मिट्टी में मिला दिया। मुझे उल्लू बनाकर यह सब मुझे अब निकाल देना चाहते हैं। वह अब कहाँ जाये! क्या करें!

उसकी सास आकर बोली- चलकर खा क्यों नहीं लेते जी, रूठते किस पर हो। यहाँ तुम्हारे नखरे सहने का किसी में बूता नहीं है। जो देते हैं, वह मत देना और क्या करोगे! तुमसे बेटी ब्याही है, कुछ तुम्हारी जिन्दगी का ठेका नहीं लिया है।

हरिधन ने मर्माहत होकर कहा - हाँ अम्माँ, मेरी भूल थी कि मैं यही समझ रहा था। अब मेरे पास क्या है कि तुम मेरी जिन्दगी का ठेका लोगी? जब मेरे पास धन भी था, तब सब कुछ आता था। अब दरिद्र हूँ, तुम क्यों बात पूछोगी? बूढ़ी सास भी मुँह फुलाकर भीतर चली गयी।

2

बच्चों के लिए बाप एक फालतू-सी चीज़ - एक विलास की वस्तु - है, जैसे घोड़े के लिए चने या बाबुओं के लिए मोहनभोग। मोहनभोग उम्र-भर न मिले, तो किसका नुकसान है; मगर एक दिन रोटी-दाल के दर्शन न हो, तो फिर देखिए क्या हाल होता है! पिता के दर्शन कभी-कभी शाम-सबरे हो जाते हैं, वह बच्चे को उछालता है, दुलारता है,

कभी गोद में लेकर या उँगली पकड़कर सैर कराने ले जाता हैं और बस, यही उसके कर्तव्य की इति हैं। वह परदेश चला जाय, बच्चे को परवा नहीं होती; लेकिन माँ तो बच्चे का सर्वस्व हैं। बालक एक मिनट के लिए भी उसका वियोग नहीं सह सकता। पिता कोई हो, उसे परवा नहीं, केवल एक उछालने-कुदानेवाला आदमी होना चाहिए; लेकिन माता तो अपनी होनी चाहिए, सोलहों-आने अपनी। वही रूप, वही रंग, वही प्यार, वही सब-कुछ। वह अगर नहीं हैं, तो बालक के जीवन का स्रोत मानो सूख जाता हैं, फिर वह शिव का नन्दी हैं, पर फूल या जल चढाना लाज़िमी नहीं, अख़्तियारी हैं। हरिधन की माता का आज दस साल हुए, देहान्त हो गया था। उस वक़्त उसका विवाह हो चुका था। वह सोलह साल का कुमार था। पर माँ के मरते ही उसे मालूम हुआ कि मैं कितना निस्सहाय हूँ। जैसे उस घर पर उसका अधिकार ही न रहा हो। बहनो के विवाह हो चुके थे। भाई कोई दूसरा न था। बेचारा अकेले घर में जाते भी डरता था। माँ के लिए रोता था, पर माँ की परछाई से डरता था। जिस कोठरी में उसमे देह-त्याग किया था, उधर आँखे तक न उठाता। घर में एक बुआ थी, वह हरिधन को बहुत दुलार करती। हरिधन को अब दूध ज्यादा मिलता, काम भी कम करना पड़ता। बुआ बार-बार पूछती - बेटा! कुछ खाओगे? बाप भी अब उसे ज्यादा प्यार करते। उसके लिए अलग एक गाय माँगवा दी। कभी-कभी उसे कुछ पैसे देते कि जैसे चाहे खर्च करे। पर इन मरहमों से वह घाव न पूरा होता था, जिसने उसकी आत्मा को आहत कर दिया था। वह दुलार और प्यार बार-बार माँ की याद दिलाता। माँ की घुड़कियों में जो मजा था, वह क्या इस दुलार में था? माँ से माँगकर, लड़कर, टुनककर, रूठकर लेने में जो आनन्द था, वह क्या भिक्षादान में था? पहले वह स्वस्थ था, माँग-माँगकर खाता था, लड़-लड़कर खाता; अब वह बीमार था, अच्छे-से-अच्छे पदार्थ उसे दिये जाते थे, पर भूख न थी।

साल भर तक वह इसी दशा में रहा। फिर दुनिया बदल गयी। एक नई स्त्री, जिसे लोग उसकी माता कहते थे, उसके घर में आयी और देखते-देखते एक काली घटा की तरह उसके संकुचित भूमंडल पर छा गयी- सारी हरियाली, सारे प्रकाश पर अंधकार का परदा पड़ गया। हरिधन ने इस नकली माँ से बात तक न की, कभी उसके पास न गया तक नहीं। एक दिन घर से निकला और सुसराल चला आया।

बाप ने बार-बार बुलाया, पर उसके जीते-जी वह फिर उस घर में न गया। जिस दिन उसके पिता के देहान्त की सूचना मिली, उसे एक प्रकार का ईर्ष्यामय हर्ष हुआ। उसकी आँखों में आँसू की एक बूँद भी न आयी।

इस नये संसार में आकर हरिधन को एक बार फिर मातृ-स्नेह का आनन्द मिला। उसकी सास ने ऋषि-वरदान की भाँति उसके शून्य जीवन को विभूतियों से परिपूर्ण कर दिया। मरुभूमि में हरियाली उत्पन्न हो गयी। सालियों की चुहल में, सास के स्नेह में, सालों के वाक्-विलास में और स्त्री के प्रेम में उसके जीवन की सारी आकांक्षाएँ पूरी हो गयीं। सास कहती- बेटा, तुम इस घर को अपना ही समझो, तुम्हीं मेरी आँखों के तारे हो। वह उससे अपने लड़कों की, बहुओं की शिकायत करती। वह दिल में समझता था, सासजी मुझे अपने बेटों से भी ज्यादा चाहती हैं।

बाप के मरते ही वह घर गया और अपने हिस्से की जायदाद को कूड़ा करके रूपयों की थैली लिए फिर आ गया। अब उसका दूना आदर-सत्कार होने लगा। उसने अपनी सारी सम्पत्ति सास के चरणों पर अर्पण करके अपने जीवन को सार्थक कर दिया। अब तक उसे कभी-कभी घर की याद आ जाती थी, अब भूलकर भी उसकी याद न आती, मानो वह उसके जीवन का कोई भीषण कांड था, जिसे भूल जाना ही उसके लिए अच्छा था। वह सबसे पहले उठता, सबसे ज्यादा काम करता। उसका मनोयोग, उसका परिश्रम देखकर गाँव के लोग दाँतों उँगली दबाते थे। उसके ससुर का भाग्य बखारते, जिसे ऐसा दामाद मिल गया। लेकिन ज्यों-ज्यों दिन गुजरते गये, उसका मान-सम्मान घटता गया। पहले देवता था, फिर घर का आदमी, अन्त में घर का दास हो गया। रोटियों में भी बाधा पड़ गयी! अपमान होने लगा। अगर घर के लोग भूखों मरते और साथ ही उसे भी मरना पड़ता, तो उसे जरा भी शिकायत न होती। लेकिन जब वह देखता, और लोग मूँछों पर ताव दे रहे हैं, केवल मैं ही दूध की मक्खी बना दिया गया हूँ, तो उसके अन्तस्तल से एक लम्बी, ठंडी आह निकल जाती। अभी उसकी उम्र कुछ पच्चीस साल की तो थी। इतनी उम्र इस घर में कैसे गुजरेगी? और तो और, उसकी स्त्री ने भी आँखें फेर ली! यह उस विपत्ति का सबसे क्रूर दृश्य था।

3

हरिधन तो उधर भूखा-प्यासा चिन्ता-दाह में जल रहा था, इधर घर में सासजी और दोनो सालो में बाते हो रही थी। गुमानी भी हाँ-में-हाँ मिलाती जाती थी।

बड़े साले ने कहा- हम लोगों की बराबरी करते हैं। यह नहीं समझते कि किसी ने उसकी जिन्दगी-भर का बीड़ा थोड़े

ही लिया है। दस साल हो गये। इतने दिनों में क्या दो-तीन हजार न हड़प गये होंगे?

छोटे साले ने कहा- मजूर हो तो आदमी घुड़के भी, डॉट भी, अब इनसे कोई क्या कहें। न जाने इनसे कब पिंड छूटेगा भी या नहीं? अपने दिल में समझते होंगे, मैंने दो हजार रुपये नहीं दिये हैं? यह नहीं समझते कि उनके दो हजार रुपये कब के उड़ चुके हैं। सवा सेर तो एक जून को चाहिए।

सास गम्भीर भाव से बोली - बड़ी भारी खोराक है!

गुमानी माता के सिर से जूँ निकल रही थी। सुलगते हुए हृदय से बोली - निकम्मे आदमी को खाने के सिवा और काम ही क्या रहता है!

बड़े- खाने की कोई बात नहीं है। जिसको जितनी भूख हो उतना खाये लेकिन कुछ पैदा करना चाहिए। यह नहीं समझते कि पहनई में किसी के दिन कटे है!

छोटे - मैं तो एक दिन कह दूँगा; अब आप अपनी राह लीजिए, आपका करजा नहीं खाया है।

गुमानी घरवालों की ऐसी-ऐसी बातें सुनकर अपने पति से द्वेष करने लगी थी। अगर वह बाहर से चार पैसे लाता, तो इस घर में उसका कितना मान-सम्मान होता, वह भी रानी बन कर रहती। न जाने क्यों कहीं बाहर जाकर कमाते उसकी नानी मरती हैं। गुमानी की मनोवृत्तियाँ अभी तक बिल्कुल बालपन की-सी थी। उसका अपना कोई घर न था। उसी घर का हित-अहित उसके लिए भी प्रधान था। वह भी उन्हीं शब्दों में विचार करती, इस समस्या को उन्हीं आँखों से देखती, जैसे उसके घरवाले देखते थे। सच तो है, दो हजार रुपये में क्या किसी को मोल ले लेंगे? दस साल में दो हजार रुपये होते ही क्या है? दो सौ ही तो साल-भर के हुए। क्या दो आदमी साल-भर में दो सौ भी न खाएँगे? फिर कपड़े-लत्ते, दूध-घी सब कुछ तो हैं। दस साल हो गये, एक पीतल का छल्ला नहीं बना। घर से निकलते तो जैसे इनके प्राण निकलते हैं। जानते हैं, जैसे पहले पूजा होती थी, वैसे ही जन्म-भर होती रहेगी। यह नहीं सोचते कि पहले और बात थी; अब और बात है। बहू ही पहले सुसराल जाती है, तो उसका कितना महातम होता है। उसके डोली से उतरते ही बाजे बजते हैं, गाँव-मुहल्ले की औरतें उसका मुँह देखने आती हैं और रुपये देती हैं। महीनों उसे घर-भर से अच्छा खाने को मिलता है, अच्छा पहनने को, कोई काम नहीं लिया जाता; लेकिन छः महीने बाद कोई उसकी बात भी नहीं पूछता, वह घर-भर की लौड़ी हो जाती है। उनके घर में मेरी तो वही गति होती। फिर काहे को रोना। जो यह कहो कि मैं तो काम करता हूँ, तो तुम्हारी भूल है, मजूर और बात है। उसे आदमी डॉटता भी है, मारता भी है, जब चाहता है रखता है, जब जी चाहता है निकाल देता है। कसकर काम लेता है। यह नहीं कि जब जी में आया, कुछ काम किया, जब जी में आया, पड़कर सो रहे।

4

हरिधन भी पड़ा अन्दर-ही-अन्दर सुलग रहा था कि दोनों साले बाहर आये और बड़े साहब बोले- भैया, उठो, तीसरा पहर ढल गया, कब तक सोते रहोगे? सारा खेत पड़ा है।

हरिधन चट से उठ बैठा और तीव्र स्वर में बोला - क्या तुम लोगों में मुझे उल्लू समझ लिया है?

दोनों साले हक्का-बक्का हो गये। जिस आदमी ने कभी जबान नहीं खोली हमेशा गुलामों की तरह हाथ बाँधे हाजिर रहा, वह आज एकाएक इतना आत्माभिमानी हो गया, यह उनको चौंका देने के लिए काफी था। कुछ जवाब न सूझा। हरिधन ने देखा, इन दोनों के कदम उखड़ गये हैं, तो एक धक्का और देने की प्रबल इच्छा को न रोक सका। उसी ढंग से बोला- मेरी भी आँखें हैं, अन्धा नहीं हूँ, न बहरा ही हूँ। छाती फाड़कर काम करूँ और उस पर भी कुत्ता समझा जाऊँ, ऐसे गधे कहीं और होंगे।

अब बड़े साले भी गरम पड़े- तुम्हें किसी ने यहाँ बाँध तो नहीं रखा है।

अबकी हरिधन लाजवाब हुआ। कोई बात न सूझी।

बड़े ने फिर उसी ढंग से कहा- अगर तुम यह चाहो कि जन्म-भर पाहुँने बने रहो और तुम्हारा वैसा ही आदर-सत्कार होता रहेस तो हमारे बस की बात नहीं है।

हरिधन ने आँखें निकाल कर कहा- क्या मैं तुम लोगों से कम काम करता हूँ?

बड़े- यह कौन कहता है?

हरिधन - तो तुम्हारे घर की यही नीति है कि जो सबसे ज्यादा काम करे, वही भूखों मारा जाय?

बड़े- तुम खुद खाने नहीं गये। क्या कोई तुम्हारे मुँह में कौर डाल देता?

हरिधन ने होठ चबाकर कहा- मैं खुद खाने नहीं गया! कहते तुम्हें लाज नहीं आती।

'नहीं आयी थी बहन तुम्हें बुलाने?'

हरिधन की आँखों में खून उतर गया, दाँत पीसकर रह गया।

छोटे साले ने कहा- अम्माँ भी आयी थी। तुमने कह दिया, मुझे भूख नहीं है, तो क्या करती।

सास भीतर से लपकी चली आ रही थीं। यह बात सुनकर बोली- कितना कहकर हार गयी, कोई उठे न तो मैं क्या करूँ!

हरिधन ने विष, खून और आग से भरे हुए स्वर में कहा- मैं तुम्हारे लड़कों का जूठा खाने के लिए हूँ! मैं कुत्ता हूँ कि तुम लोग खाकर मेरे सामने रुखी रोटी का टुकड़ा फेंक दो?

बुढ़िया- नें ऐंठकर कहा - तो क्या तुम लड़कों की बराबरी करोगें?

हरिधन परास्त हो गया! बुढ़िया के एक ही वाक्प्रहार ने उसका का काम तमाम कर दिया। उसकी तनी हुई भवें ढीली पड़ गयी, आँखों की आग बुझ गयी, फड़कते हुए नथने शान्त हो गये। किसी आहत मनुष्य की भाँति वह जमीन पर गिर पड़ा। 'क्या तुम मेरे लड़कों की बराबरी करोगें?' यह वाक्य एक लम्बे भाले की तरह उसके हृदय में चुभता चला जाता था - न हृदय का अन्त था, न उस भाले का!

5

सारे धर ने खाया, पर हरिधन न उठा। सास ने मनाया, सालियों ने मनाया, ससुर ने मनाया, दोनो साले मनाकर हार गये। हरिधन न उठा, वहाँ द्वार पर एक टाट पड़ा था। उसे उठाकर सबसे अलग कुएँ पर ले गया और जगत पर बिछाकर पड़ा रहा।

रात भीग चुकी थी। अनन्त आकाश में उज्ज्वल तारे बालकों की भाँति क्रीड़ा कर रहे थे। कोई नाचता था, कोई उछलता था, कोई हँसता था, कोई आँखें मींचकर फिर खोल देता था। रह-रहकर कोई साहसी बालक सपाटा भरकर एक पल में उस विस्तृत क्षेत्र को पार कर लेता था और न जाने कहाँ छा जाता था। हरिधन को अपना बचपन याद आया, जब वह भी इसी तरह क्रीड़ा करता था। उसकी बाल-स्मृतियाँ उन्हीं चमकीले तारों की भाँति प्रज्वलित हो गयीं। वह अपना छोटा-सा घर, वह आम का बाग, जहाँ वह केरियाँ चुना करता था; वह मैदान, जहाँ कबड्डी खेला करता था, सब उसका याद आने लगे। फिर अपनी स्नेहमयी माता की सदय मूर्ति उसके सामने खड़ी हो गयी। उन आँखों में कितनी करुणा थी, कितनी दया थी। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो माता की आँखों में आँसू भरे, उसे छाती से लगा लेने के लिए हाथ फैलाए उसकी ओर चली आ रही हैं। वह उस मधुर भावना में अपने को भूल गया। ऐसा जान पड़ा, मानो माता ने उसे छाती से लगा लिया हैं और उसके सिर पर हाथ फेर रही हैं। वह रोने लगा, फूट-फूटकर रोने लगा। उसी आत्म-सम्मोहित दशा में उसके मुँह से यह शब्द निकले- अम्माँ, तुमने मुझे इतना भुला दिया। देखो, तुम्हारे प्यारे लाल की क्या दशा हो रही है? कोई उस पानी को भी नहीं पूछता। क्या जहाँ तुम हो, वहाँ मेरे लिए जगह नहीं है! सहसा गुमानी ने आकर पुकारा- क्या सो गये तुम, ऐसी भी क्या राच्छसी नींद! चल कर खा क्यों नहीं लेते? कब तक कोई तुम्हारे लिए बैठा रहे।

हरिधन उस कल्पना जगत से क्रूर प्रत्यक्ष में आ गया। वही कुएँ की जगत थी, वही फटा हुआ टाट और गुमानी सामने खड़ी कह रही थी- कब तक कोई तुम्हारे लिए बैठा रहे!

हरिधन उठ बैठा और मानो तलवार म्यान से निकालकर बोला- भला, तुम्हें मेरी सुध तो आयी! मैंने कह तो दिया था, मुझे भूख नहीं है।

गुमानी- तो कितने दिन तक न खाओगे?

'अब इस घर का पानी भी न पीऊँगा। तुझे मेरे साथ चलना है या नहीं?'

दृढ़ संकल्प से भरे हुए इन शब्दों को सुनकर गुमानी सहम उठी। बोली- कहाँ जा रहे हो?

हरिधन ने मानो नशे में कहा- तुझे इससे क्या मतलब? मेरे साथ चलेगी या नहीं? फिर पीछे से न कहना, मुझसे कहा नहीं।

गुमानी आपत्ति के भाव से बोली- तुम बताते क्यों नहीं, कहाँ जा रहे हो?

'तू मेरे साथ चलेगी या नहीं'

'जब तक बता न दोगे, मैं न जाऊँगी।'

'तो मालूम हो गया, तू नहीं जाना चाहती। मुझे इतना ही पूछना था, नहीं तो अब तक मैं आधी दूर निकल गया होता।' यह कहकर उठा और अपने घर की ओर चला। गुमानी पुकारती रही- 'सुन लो, सुन लो' पर उसने फिरकर भी न देखा।

6

तीस मील की मंजिल हरिधन ने पाँच घंटों में तय की। जब वह अपने गाँव की अमराइयों के सामने पहुँचा, तो उसकी मातृ-भावना उषा की सुनहरी गोद में खेल रही थी। उन वृक्षों को देखकर उसका विह्वल हृदय नाचने लगा। मन्दिर का सुनहरा कलश देखकर वह इस तरह दौड़ा, मानो एक छलाँग में उसके ऊपर जा पहुँचेगा। वह वेग में दौड़ा जा रहा था, मानो उसकी माता गोद फैलाए उसे बुला रही हो। जब वह आमों के बाग़ में पहुँचा, जहाँ डालियों पर बैठकर वह हाथी की सवारी का आनन्द पाता था, जहाँ के कच्चे बेरों और लिसोड़ों में एक स्वर्गीय स्वाद था, तो वह बैठ गया और भूमि पर सिर झुकाकर रोने लगा, मानो अपनी माता को अपनी विपत्ति-कथा सुना रहा हो। वहाँ की वायु में, वहाँ के प्रकाश में, मानो उसकी विराट्-रूपिणी माता व्याप्त हो रही थी। वहाँ की अंगुल-अंगुल भूमि माता के पद-चिह्नों से पवित्र थी, माता के स्नेह में डूबे हुए शब्द अभी तक मानो आकाश में गूँज रहे थे। इस वायु और इस आकाश में न जाने कौन-सी संजीवनी थी, जिसने उसके शोकार्त हृदय को फिर बालोत्साह से भर दिया। वह एक पेड़ पर चढ़ गया और अधर से आम तोड़-तोड़कर खाने लगा। सास के वह कठोर शब्द, स्त्री का वह निष्ठुर आघात, वह सारा अपमान उसे भूल गया। उसके पाँव फूल गये थे, तलवों में जलन हो रही थी; पर इस आनन्द में उसे किसी बात का ध्यान न था। सहसा रखवाले ने पुकारा- वह कौन ऊपर चढ़ा हैं रे? उतर अभी नहीं तो ऐसा पत्थर खींचकर मारूँगा कि वही ठंडे हो जाओगे।

उसने कई गालियाँ भी दी। इस फटकार और इन गालियों में इस समय हरिधन को अलौकिक आनन्द मिल रहा था। वह डालियों में छिप गया, कई आम काट-काट नीचे गिराये, और ज़ोर से ठट्टा मारकर हँसा। ऐसी उल्लास से भरी हुई हँसी उसने बहुत दिन से न हँसी थी।

रखवाले को यह हँसी परिचित मालूम हुई। मगर हरिधन यहाँ कहाँ? वह ससुराल की रोटियाँ तोड़ रहा है! कैसा हँसोढ़ा था, कितना चिबिल्ला। न जाने बेचारे का क्या हाल हुआ? पेड़ की डाल से तालाब में कूद पड़ता था। अब गाँव में ऐसा कौन है?

डॉक्टर बोला- वहाँ से बैठे-बैठे हँसोगे, तो आकर सारी हँसी निकाल दूँगा, नहीं तो सीधे उतर आओ।

वह गालियाँ देते जा रहा था कि एक गुठली आकर उसके सिर पर लगी। सिर सहलाता हुआ बोला- यह कौन शैतान हैं, नहीं मानता। ठहर तो, मैं आकर तेरी खबर लेता हूँ।

उसने अपनी लकड़ी नीचे रख दी और बंदरों की तरह चट-पट ऊपर चढ़ गया। देखा तो हरिधन बैठा मुस्करा रहा है।

चकित होकर बोला- अरे हरिधन, तुम यहाँ कब आये? इस पेड़ पर कब से बैठे हो?

दोनों बचपन के सखा वहीं गले मिले।

'यहाँ कब आये? चलो, घर चलो। भले आदमी, क्या वहाँ आम भी मयस्सर न होते थे?'

हरिधन ने मुस्कराकर कहा- मँगरू, इन आमों में जो स्वाद है, वह और कहीं के आमों में नहीं है। गाँ का क्या रंग-ढंग है?

मँगरू- सब चैनचान है भैया! तुमने तो जैसे नाता ही तोड़ लिया। इस तरह कोई अपना गाँव-घर छोड़ देता है?

जब से तुम्हारे दादा मरे, सारी गिरस्ती चौपट हो गयी। दो छोटे-छोटे लड़के है। उनके लिए क्या होता है?

हरिधन- अब उस गिरस्ती से क्या वास्ता है भाई? मैं तो अपना ले-दे चुका। मजूरी तो मिलेगी न? तुम्हारी गैया ही चरा दिया करूँगा; मुझे खाने को दे देना।

मँगरू ने अविश्वास के भाव से कहा- अरे भैया, कैसी बातें करते हो, तुम्हारे लिए जान हाजिर है। क्या ससुराल में अब न रहोगे? कोई चिन्ता नहीं। पहले तो तुम्हारा घर ही है। उसे सँभालो! छोटे-छोटे बच्चे हैं, उनको पालो। तुम नयी अम्माँ से नाहक डरते थे। बड़ी सीधी है बेचारी। बस, अपनी माँ समझो। तुम्हे पाकर तो निहाल हो जायेगी। अच्छा, घरवाली को भी तो लाओगे?

हरिधन- उसका अब मुँह न देखूँगा। मेरे लिए वह मर गयी।

मँगरू- तो दुसरी सगाई हो जायेगी। अबकी ऐसी मेहरिया ला दूँगा कि उसके पैर धो-धोकर पियोगे, लेकिन कहीं

पहली भी आ गयी तो?
हरिधन- वह न आयगी।

7

हरिधन अपने घर पहुँचा तो दोनो भाई, 'भैया आये! भैया आये!' कहकर भीतर दौड़े, और माँ को खबर दी। उस घर में कदम रखते ही हरिधन को ऐसी शांत महिमा का अनुभव हुआ मानो वह अपनी माँ की गोद में बैठा हुआ है। इतने दिनों ठोकरें खाने से उसका हृदय कोमल हो गया था। जहाँ पहले अभिमान था, आग्रह था, हेकड़ी थी, वहाँ अब निराशा थी, पराजय और याचना थी। बीमारी को ज़ोर कम हो चला था, अब मामूली दवा भी असर कर सकती थी। किले की दीवारें छिद चुकी थी। अब उसमें घुस जाना असाध्य न था। वही घर जिससे वह एक दिन विरक्त हो गया था, अब गोद फैलाये उसे आश्रय देने को तैयार था। हरिधन का निरवलम्ब मन यह आश्रय पाकर मानो तृप्त हो गया। शाम को विमाता ने कहा - बेटा, तुम घर आ गये, हमारे धन्य भाग। अब इन बच्चों को पालो। माँ का नाता न सही, बाप का नाता तो है ही। मुझे एक रोटी दे देना, खाकर एक कोने में पड़ी रहूँगी। तुम्हापी अम्माँ से मेरी बहन का नाता है। उस नाते से तुम मेरे लड़के होते हो।

हरिधन ने मातृ-विह्वल आँखों से विमाता के रूप में अपनी माता के दर्शन किये। घर के एक-एक कोने से मातृ-स्मृतियों की छटा चाँदनी की भाँति छिटकी हुई थी, विमाता का प्रौढ मुँखमंडल भी उसी छटा से रंजित था। दूसरे दिन हरिधन फिर कंधे पर हल रखकर खेत को चला। उसके मुख पर उल्लास था और आँखों में गर्व। वह अब किसी का आश्रित नहीं, आश्रयदाता था, किसी के द्वार का भिक्षुक नहीं, घर का रक्षक था।

एक दिन उसने सुना, गुमानी ने दूसरा घर कर लिया। माँ से बोला- तुमने सुना काकी! गुमानी ने घर कर लिया। काकी ने कहा- घर क्या कर लेगी, ठट्टा है। बिरादरी में ऐसा अंधेर? पंचायत नहीं, अदालत तो है?

हरिधन ने कहा- नहीं काकी, बहुत अच्छा हुआ। ला, महावीरजी को लड्डू चढा आऊँ। मैं तो डर रहा था, कहीं मेरे गले न आ पड़े। भगवान् ने मेरी सुन ली। मैं वहाँ से यही ठानकर चला था, अब उसका मुँह न देखूँगा।